International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 1; Issue 4; April 2016; Page No. 82-84

कठोपनिषद् में आत्मचिन्तन

इंदुबाला
V.P.O सिंधवी खेड़ा, जींद, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

श्रेय और प्रेय दोनों भिन्न मार्ग है जो मनुष्य को अपनी ओर आकृष्क करते हैं। श्रेय मार्ग लोकोतर कल्याण का मार्ग है, जबकि प्रेय मार्ग संसर से बाँधनेवाला तथा मनुष्य के समक्ष रहते हैं तो विचारशील विद्वान् प्रवृतिमार्ग की उपेक्षा कर निवृतिमार्ग को ग्रहण करते हैं। वस्तुतः मंदबुद्धि व्यक्ति तो सांसारिक सुख के हेतुभूत प्रेये मार्ग को स्वीकार करते है। वस्तुतः श्रेय और प्रेय परस्पर–विरोधी मार्ग हैं जिन्हें विद्या और अविद्या नाम से भी जाना जाता है।[1]

अविद्या में पड़े रहनेवाले ही अपने–आपको धीर और विद्वान् मानते हैं। ऐसे मूढ़ और अभिमानी लोग विपरीत रास्ते पर चलते हुए अंधे द्वारा परिचालित अंधे की भाँति दुर्गति प्राप्त करते हैं।[2] धन के मोह से मुग्ध, मूढ, प्रमादयुक्त तथा विवेकरहित होकर जो मनुष्य परलोक की बात नहीं करता, उसे तो यही लोक सब–कुछ दीखता है। ऐसा लौकि दृष्टि–सम्पन्न व्यक्ति बार–बार मृत्यु के वश में होता है।[3]

वस्तुतः आत्मज्ञान दुर्लभ वस्तु है। बहुतों को तो यह ज्ञान सुनने को भी नहीं मिलता, और जिन्हें सुनने का अवसर मिलता है वे भी इसे सम्यक् रूप से नहीं जानते। आत्मज्ञान का जानकार तो कोई विरला ही होता है तथा इसे प्राप्त करनेवाला भी कोई प्रवीण पुरूष होता है। ऐसा प्रवीन पुरूष जिस आत्मज्ञान का उपदेष्टा होता है, उस ज्ञान को ग्रहण करनेवाले की महिमा का क्या कहना![4]

इस आत्मा (परमतत्व) का उपदेश और चिंतन तो बहुत–से लोक करते हैं परन्तु यह इतना सुज्ञेय नहीं है। वस्तुतः यह आत्मा अणु से भी सूक्ष्म तथा अतर्क्य है। आत्मज्ञान की विधायिका बुद्धि को तर्क से विचलित नहीं करना चाहिए। आत्मवित् गुरू से उपदिष्ट बुद्धि ही उतम ज्ञान की साधिका होती है।[5]

यह निश्चित है कि धन और ऐश्वर्य अनित्य हैं तथा अनित्य साधनों से नित्य आत्मा प्राप्त नहीं हो सकता। वस्तुतः विद्धान् लोग आत्मा–सम्बन्धी योग के अभ्यास से उस कटिनता से प्राप्त होने योग्य, सूक्ष्म, अन्तःकरण और आत्मा में व्यापक, हृदयाकाश में स्थित, दुष्प्राप्य, नित्य प्रकाशमय, परमात्मा को जानकर सुख–दुःख दोनों को छोड़ देते है।

आचरणीय धर्म से सिद्ध होने योग्य आत्मा की चर्चा सुनकर और अच्छी प्रकार ग्रहण और बारम्बार अभ्यास करके इस सूक्ष्म ब्रह्म को प्राप्त करना सम्भव है। यह ब्रह्म ही आनन्दरूप है और उसे प्राप्त करना भी आनन्दायक है। मेरी मान्यता है कि यह ब्रह्मद्वार तेरे लिए तो खुला हुआ ही है।

"धर्म और अधर्म से भिन्न, कृत और अकृत से पृथक्, भूत, भविष्य और वर्तमान से परे स्वरूप का वर्णन करते हैं–"चारों वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, सारे तप और नियमादि जिसका कथन करते हैं, जिस पद की इच्छा करते हुए ब्रह्मचार्य के नियमों का आचरण करते हैं, वह पद ओम् है। यह ओमाक्षर ही ब्रह्म है। यही परम (सर्वश्रेष्ठ) है, उसी अविनाशी ब्रह्म को जानकर, जो जिस विषय की इच्छा करता है, उसे प्राप्त कर लेता है। यह ओम् ही श्रेष्ठ आलम्बन है। यह आलम्बन ही सर्वोपरि आश्रय है। इसी आलम्बन को जानकर ब्रह्मलोक में जिज्ञासु आनन्दित होता है।"

"ब्रह्म की ही भाँति यह आत्मा भी अमर, शाश्वत, नित्य तथा अजन्मा है। इसका न कभी जन्म हुआ और न यह किसी को कार्य रूप से उत्तन्न करता है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी जीवात्मा नष्ट नहीं होता। जो इस अमर आत्मा को मारनेवाला या मरा हुआ जानता है, वस्तुतः वह इसका यथार्थ रूप नहीं जानता। आत्मा न मरता है और न मारा जाता है।"[6]

"आत्मा अणु से भी सूक्ष्म तथा महान् है। यही प्राणी के हृदयाकाश में स्थित रहता है। परमात्मा की कृपा से ही कोई मुमुक्षुजन इसकी महिमा को निष्काम तथा गतशोक होकर देखता है। आत्मा की शक्तियाँ दिव्य हैं।[7] व्यक्ति एक स्थान पर बैठा हुआ भी आत्मिक शक्ति के बल पर दूर तक पहुँच जाता है। सुप्तावस्था में भी आत्मिक शक्ति ही उसे सर्वत्र भ्रमण कराती है। ऐसे दिव्यशक्तिसम्पन्न आत्मा को उपनिषद् वक्ता से भिन्न अन्य कौन व्यक्ति जानने में समर्थ है? साकार शरीरों में निराकार, चलायमान पदार्थों में अचल, अनन्त और व्यापक परमात्मा को जानकर धीर पुरूष शोक नहीं करता। यह परमात्मा प्रवचनों से प्राप्त नहीं होता, न मेधा बुद्धि से, और न बहुत–कुछ सुनने से। यह परमात्मा जिसको अपना भक्त चुन लेता है उसके ही समक्ष अपने रूप का प्रकाश करता है। अस्थिरमति तथा असमाहित चित वाला व्यक्ति इसे प्राप्त नहीं कर सकता। केवल प्रज्ञान (उत्कृष्टि बुद्धि) से ही इसे प्राप्त किया जाता है। इस सर्वग्रामी ब्रह्म को 'इदमित्थम्' जानना कैसे सम्भव है, क्योंकि प्रलय–काल में तो यह ब्रह्म और क्षत्र शक्ति को अपने भीतर ग्रस लेता है। मृत्यु भी इसके समक्ष निस्तेज हो जाती है।[8]

"मनुष्य के हृदयाकाशरूपी लोक में निवास करनेवाले छाया और प्रकाश की भाँति ही ईश्वर और जीव हैं जो स्वकृत कर्मों का फल भेगते हैं। कर्मों के फल भेगने का अभिप्राय यही है जीव तो स्वकृत कर्मों का फल भोगता है और ईश्वर उसके फल का प्रदाता है। प्रकारान्तर से दोनें ही, कर्मों के कर्ता तथा फल–भोक्ता हैं। ब्रह्मविद् दोनों को ऐसा ही करते हैं और पच्आग्नि की साधना करनेवाले कर्मकाण्डी लोग भी इन्हें ऐसा ही बतो हैं। ज्ञान और कर्म–इन दोनों मार्गो से ईश्वर को प्राप्त किया जाता है।"

"मनुष्य का यह शरीर ही रथ है और जीवात्मा उसके स्वामी के रूप में रथासीन है। बुद्धि को सारथी के तुल्य जानना चाहिए, क्योंकि सारथी जिस प्रकार रथ का भली–भाँति सुचालन करता है, उसी प्रकार बुद्धि के निर्देशन में ही शरीर की प्रवृति होती है। मनरूपी लगाम को बुद्धिरूपी सारथी ने अच्छी तरह से पकड़ रखा है। अभिप्राय यह है कि मन पर बुद्धि का नियंत्रण है।[9]

शरीररूपी रथ को जीवन–पथ पर ले–जानेवाली इन्द्रियाँ ही घोड़ों के तुल्य हैं और इन्द्रियों के विषय ही वे मार्ग हैं जिन पर यह रथ दौड़ रहा है। विचारशील मनीषियों की दृष्टि में ऐसी आत्मा, मन और इन्द्रियों से युक्त प्राणी ही भोक्ता (सांसारिक सुख–दुःखों का अनुभवकर्ता) कहताता है।"

"परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि जो अज्ञानी अस्थिर मन वाला है, उसकी इन्द्रियाँ दुष्ट घोड़ों के समान स्वच्छाचारिणी होकर उसके वश में नहीं रहतीं। इसके विपरीत जो विज्ञानवान् है, उसका मन भी उसके वश में रहता है, फलतः उसकी इन्द्रियाँ भी सुधरे हुऐ घोड़े की भाँति वश में रहती हैं। जो विवेकहीन पुरूष अपने मन के पीछे चलनेवाला होता है, अर्थात् जो मन का निग्रह करने में असमर्थ है, वह अपवित्र भी होता है। वह उस परम पद (मोक्ष) को प्राप्त नहीं होता। उसे तो संसार–चक्र में पुनः–पुनः आना ही पड़ता है। इसके विपरीत जो विवकसम्पन्न है, वह अपने मन को वश में रखता है तथा सदा पवित्र भी रहता है। ऐसा, मन का वशीकरण करनेवाला पुरूष ही मोक्षपदगामी होता है। वह उस पद को प्राप्त कर लेता है जिससे पुनः सांसारिक बन्धनों में आना नहीं होता। इस प्रकार जिस मनुष्य का बुद्धिरूपी सारथी विवकेयुक्त है और जिसकी मनरूपी लगाम भी उसके (सारथी के) वश में है, वह इस जीवनरूपी मार्ग को पार कर विष्णु नामक व्यापक परमात्मा के सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त कर लेता है।"[10]

"इन्द्रियों से उनके विषय सूक्ष्म हैं और विषयों से मन सूक्ष्म है। मन से बुद्धि की सूक्ष्मता स्वतः सिद्ध है। बुद्धि से महतत्व को सूक्ष्म जानना चाहिए और महतत्व से भी सूक्ष्म उसकी उपादानरूपा अव्यक्त प्रकृति है जो सूक्ष्म किन्तु जड़ है। इस अव्यक्त प्रकृति से भी सूक्ष्म हैं चेतन जीव और ब्रह्म। ये दोनों चेतन सताएँ 'पुरूष' संज्ञा से जानी जाती हैं। चेतन परमात्मा से सूक्ष्म और कुछ नहीं है। वही पराकाष्ठा है और वही जीव की अन्तिम गति है।"

"सब भौतिक पदार्थे में भी अपनी सूक्ष्मता से विद्यमान यह परमात्मा चर्म–चक्षुओं से दिखाई नहीं देता। केवल सूक्ष्मदर्शी लोग ही अपनी सूक्ष्म प्रज्ञा (बुद्धि) से इसे देखते हैं। साधक को चाहिए कि वह अपने मन में वाणी को जोड़े अर्थात् विचारपूर्वक ही वाणी का प्रयोग करे। तत्पश्चात् मन का नियोजन बुद्धि को महतत्व से युक्त करे और महतत्व को प्रशान्त आत्मा में स्थिर करे। इस प्रकार आत्मसाक्षत्कार से ही परमात्मसाक्षात्कार सम्भव है।"

तदुपरांत उपनिषत्कार– "उठो, जागो और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करों। वस्तुतः यह साधनापथ छुरे की धार के तुल्य है। सुक्ष्म दर्शी कवियों ने इस पथ को ऐसा ही दुर्गम कहा है। मृत्यु–मुख से छूटने का एकमात्र उपाय यही है कि हम उस शब्द से परे अवर्णनीय, अनिर्वचनीय, अस्पृश्य (भौतिक स्पर्श से परे), अरूप, नित्य (अविनाशी), असर (भोतिक रसों से हीन), अगन्ध (गंधहीन), अनादि, अनन्त, महतत्व से भी परे, ध्रुव (अचल) तत्व को जानें।"[12]

उपनिषद् के इस प्रसंग को समाप्त करते हुए ऋषि ने कथा का महात्म्य बताया जो कोई व्यक्ति सावधान होकर परम गुह्य (रहस्यपूर्ण) कथानक को विद्वानों की सभा में अथवा श्राद्धकाल (विद्वनों की पूजा–अर्चा–सम्मान–सत्कार के समय) में सुनाता है, तो उसे असीम फल की प्राप्ति होती है।"

उपनिष्त्कार

"स्वयम्भू–परमात्या ने मनुष्य की इन्द्रियों को बाह्य विषयों की ओर आकृष्ट होनेवाला बनाया है, इसलिए मनुष्य अन्तरात्मा की और उन्मुख न होकर बह्योन्मुख रहता है। कोई ध्यानशील एवं विवेकी पुरूष ही मोक्ष का इच्छुक बनकर हृदयाकाश में स्थित स्वात्मा को देखने का प्रयत्न करता है। अतः जो अज्ञानी पुरूष बाह्य विषयों का अनुधावन करते हैं वे मृत्यु के बंधन को प्राप्त करते हैं। किन्तु ज्ञानी पुरूष निश्चय ही मोक्ष को जानता हुआ, सांसारिक अनित्य वस्तुओं की कामना या प्रार्थना नहीं करता है। आत्मज्ञानी पुरूष ही जानता है कि रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्ष तथा मैथुन आदि इन्द्रियों तक सीमित हैं। संसार में इन भौतिक विषय–सुखों के अतिरिक्त और क्या है? परन्तु चैतन्य आत्मा तो इनसे पृथक् ही है।"

"उस महान् एवं विभु (सर्वत्र व्यापक) परमात्मा को जानकर विवेकशील मनुष्य शोक नहीं करता, क्योंकि वह इस ईश्वर की सहायता से ही स्वप्न एवं जागृत अवस्थाओं को बार–बार प्राप्त करता है। वह ब्रह्म तो कर्मफलों के भोक्ता जीव का समीपवर्ती है, वही भूत तथा भविष्यत् का स्वामी है। उसे ही जानकर मनुष्य को निर्भीकता प्राप्त होती है। उससे भिन्न जीव पंचभूतों के संघातरूप शरीर से पूर्व भी विद्यमान रहता है, वही हृदयाकाश में प्रविष्ट होकर तत्रस्थित परमात्मा को देखता है। जब मनुष्य की बुद्धि प्रकाशयुक्त तथा अखंडित रहती हुई प्राणों के साथ उत्पन्न होती है, तो उसी की सहायता से आत्मा की अन्तर्मुखी वृति जागृत होती है जो अन्ततः परमात्मदर्शन में सहायक बनती है। वह परमात्मा ज्ञानकाण्डियों और कर्मकाण्डियों, दोनों के द्वारा समानरूप से नित्य स्तुत्त एवं उपास्य है। ज्ञानी और कर्ममार्गी, ईश्वर को हृदय–देश में उसी प्रकार सुरक्षित देखते हैं जिस प्रकार गर्भिणी स्त्री के गर्भ में भ्रूण तथा अरणियों में अग्नि विद्यमान रहता है।"[14]

"सूर्यादि ज्योतिष्मान् पदार्थों का उदय और अस्त उसी परमेश्वर से होता है। अन्य सब देवता–प्रकाशमान नक्षत्र–ग्रहादि भी उसी के समर्पित हैं। उसका उल्लंघन करना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। वही ब्रह्म सर्वत्र है, इस लोक में भी और परलोक में भी। जो व्यक्ति यह सोचता है कि इस लोक का स्वामी परमात्मा अन्य है और अन्य लोकों का विधाता ईश्वर कोई दूसरा है, वह अज्ञानी पुरूष एक परमात्मा में नाना भाव को धारण करने के कारण मृत्यु प्राप्त करता है। वस्तुतः यह ब्रह्म मन से ही प्राप्त करने योग्य है। इसमें नानात्व कुछ नहीं है। जो अज्ञानी ब्रह्म में नाना भाव रखता है, वह मृत्यु प्राप्त करता है और बार–बार जन्म–मरण के बंधन में आता है। भूत और भविष्यत् का स्वामी परमात्मा अंगुष्ठमात्र हृदयाकाश में स्थित जीवात्मा में निवास करता है। उसे जानकर ही मनुष्य दुःख और पीड़ा से मुक्त होता है। अंगुष्ठमात्र हृद्यदेश में स्थित वह पुरूष–परमात्मा ही निर्धूम, निर्विकार, ज्योतिरूप है, वही भूत तथा भविष्यत् का स्वामी है, उसी की शाश्वत सता है–वह कल भी था और आज भी है। जैसे विषम

संदर्भ ग्रंथ

1. कठोपनिषद् 1.2.1।
2. कठोपनिषद् 1.2.5।
3. कठोपनिष्द् 1.2.6।
4. उपनिषदों की कथाएं (डॉ0 भवानी लाल भारतीय) पृष्ठ सं 14।
5. इशादि नौ उपनिषद् (गीता प्रैस गोरख पुर पृष्ठ संख्या 105)।
6. कठोपनिषद 1.2.18।
7. उपनिषदों की कथाएं (डॉ0 भवानी लाला भारतीय) पृष्ठ संख्या 16।
8. कठोपनिषद् 1.2.25।

9. ईशादि नौ उपनिषद् (गीता प्रैस गोरखपुर पृष्ठ संख्या 122)।
10. कठोपनिषद् 1.3.3।
11. ईशादि नौ उपनिषद् व (गीता प्रैस गोरख पुर) पृष्ठ संख्या 130।
12. उपनिषदों की कथाएं (डॉ0 भवानी लाल) पृष्ठ संख्या 18।
13. कठोपनिषद् 3.1.1.।
14. उपनिषदों की कथाएं (डॉ0 भवानी लाल भारतीय) पृष्ठ संख्या 19।